रूपांतरण के सूत्र

डॉ रमेश सिंह पाल

संकल्प

आपका प्रेम एवं आशीर्वाद

डॉ रमेश सिंह पाल द्वारा लिखी गयी यह पुस्तक मानव जीवन को गहराई से समझने और उसे एक परिवर्तनकारी यात्रा पथ प्रदान करने में सहायक हो सकती है। लेखक ने मनोवैज्ञानिक तथ्यों, आधुनिक विज्ञान और व्यक्तिगत अनुभव को एक साथ इस तरह पुस्तक में बुना है, जो पाठको को आत्म–अन्वेषण की यात्रा पर ले जाएगा। यह पुस्तक उन सभी के लिए एक आवश्यक मार्गदर्शिका है जो अपनी आध्यात्मिक समझ को गहरा करना चाहते हैं, यह पुस्तक आपको अपनी पूरी क्षमता को जगाने और एक उद्देश्यपूर्ण तथा परिपूर्ण जीवन जीने के लिए आवश्यक उपकरण और प्रेरणा प्रदान करेगी।

मैं तहे दिल से डॉ पाल को बधाई देता हूँ और इस पुस्तक के बारे में यही कहूंगा कि जो कोई भी अपनी आध्यात्मिक समझ का विस्तार करना चाहता है उसके लिए यह पुस्तक अवश्य ही एक पथ–प्रदर्शक का कार्य करेगी।

मनु कुमार श्रीवास्तव, आई ए एस
मुख्य सचिव, महाराष्ट्र सरकार

सर्वप्रथम मै डॉ. रमेश सिंह पाल को उनकी पुस्तक ''रूपांतरण के सूत्र'' प्रकाशित होने की बहुत–बहुत बधाई और शुभकामनाये देता हूँ। इस पुस्तक का ड्राफ्ट जब मैंने पढ़ा तो पाया कि यह पुस्तक एक स्पष्ट, आकर्षक और आसानी से पढ़ी जाने वाली शैली में लिखी गई है और यह पुस्तक अवश्य ही पाठकों को अधिक प्रामाणिक रूप से अपने सच्चे स्वयं के बारे में जानने और स्वयं के भीतर छिपी सम्भावनाओ एवं क्षमताओ के प्रति जागरूकता लाने का काम करेगी। इस पुस्तक में डॉ पाल ने बखूबी ढंग से बताया है कि कैसे कोई व्यक्ति अध्यात्मिक जीवन को अपनाकर अपनी आंतरिक बुद्धिमत्ता को उच्च स्तर तक ले जा सकता है। इस पुस्तक को पढकर आप अपने दिमाग और शरीर पर काबू पा सकते है और आपका जीवन तनाव से दूर और आनंदमय हो जाएगा। एक बार पुनः डॉ पाल आपको ''रूपांतरण के सूत्र'' पुस्तक के सफल प्रकाशन के लिए बधाई एवं आपके स्वर्णिम भविष्य के लिए शुभकामनाये।

डा. रजनीकांत, पद्मश्री
जी आई विशेषज्ञ, वाराणसी

डॉ रमेश सिंह पाल एक उत्कृष्ठ कोटि के लेखक और आध्यात्मिक व्यक्ति है। उनके द्वारा प्रस्तुत तथ्य आजकल के दौर में बिलकुल सटीक बैठते है। उनकी किताबो में सदा इस बात पर जोर होता है कि कैसे एक संतुलित जीवन जिआ जाये? मै आपको ''रूपांतरण के सूत्र'' किताब प्रकाशित होने पर हार्दिक शुभकामनाये देता हूँ और आशा करता हूँ कि आपकी अन्य किताबो कि तरह ही, ये किताब भी पाठको को अवश्य पसंद आएगी।

डॉ. अशोक दलवई, आई ए एस
मुख्य कार्यकारी अधिकारी, राष्ट्रीय वर्षा सिंचित क्षेत्र प्राधिकरण, भारत सरकार

जो लोग जीवन में हमेशा दुखी रहते हैं, गुस्सा करते हैं और हमेशा चिढ़–चिढ़े रहते हैं, यह पुस्तक अवश्य ही उनके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। डॉ रमेश सिंह पाल की लेखनी आपको अंदर तक झकझोर के रख देती है। यह पुस्तक पढ़ने के बाद आप जीवन और जीवन के मूल्यों को सकारात्मक रूप से देखने में सक्षम हो सकते है। मै पुनः डॉ पाल को अपनी शुभकामनाये प्रेषित करता हूँ।

दीपक ज्योति घिल्डियाल, आई पी एस
भू. पू.–पुलिस महानिरीक्षक, उत्तराखंड

यह पुस्तक सम्पूर्ण अस्तित्व और हमारे आस–पास की दुनिया की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए एक मार्गदर्शक है। डॉ पाल आपको ''रूपांतरण के सूत्र'' पुस्तक के सफल प्रकाशन के लिए बधाई और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी आप इसी प्रकार समाज को अपनी लेखनी के माध्यम से अध्यात्म के प्रति जागरूक करते रहेंगे। आपको स्वर्णिम भविष्य की शुभकामनाये।

एन वी सिंह, आई एफ एस
भू. पू.–एडि प्रिंसिपल चीफ कंजर्वेटर, उत्तराखंड

मैंने डॉ पाल द्वारा लिखी गयी उनकी सभी पुस्तके पढ़ी है। उनकी लेखनी पढ़कर मन को बड़ा सकुन मिलता है। मै उनके द्वारा समाज में चलायी जा रही आध्यात्मिक जाग्रति

के लिए उन्हें साधुवाद एवं अनेको शुभकामनाये देता हूँ और आशा करता हूँ कि वे भविष्य में भी इसी प्रकार लिखते रहेंगे तथा अपनी वाणी और लेखो द्वारा हम लोगो का मार्गदर्शन करते रहेंगे। डॉ पाल को बधाई एवं शुभकामनाये।

बी एस चलाल, वरि0 पीसीएस
संभागीय खाद्द्य नियंत्रक, कुमाऊं मंडल उत्तराखंड

चाहे आप एक अनुभवी साधक हों या आपने अभी–अभी अपनी यात्रा शुरू की है, पुस्तके आपको अपनी पूरी क्षमता को जगाने और एक उद्देश्यपूर्ण तथा परिपूर्ण जीवन जीने के लिए आवश्यक उपकरण और प्रेरणा प्रदान करती है। आज कल के तनाव भरे माहौल में अपने चित्त को शांत करने और एक सुखी जीवन जीने की राह, डॉ पाल अपनी हर किताब में अवश्य रूप से बताते है। मै डॉ. रमेश सिंह पाल को उनकी पुस्तक ''रूपांतरण के सूत्र'' प्रकाशित होने पर हार्दिक शुभकामनाये देता हूँ।

मनीष बघेल
प्रोटोकॉल/अधिशाषी अधिकारी, लोकसभा, नई दिल्ली

प्रस्तावना

हर मनुष्य के जीवन में एक प्यास है। एक अभिप्सा है, एक आकांक्षा है। कुछ पाने की। हम ये कह सकते है कि मनुष्य जीवन में एक रिक्तता है और उसी रिक्तता को भरने के लिए मनुष्य इतना परेशान है। अगर ये रिक्तता किसी तरह भरी जा सके तो ही जीवन में शान्ति और कृत–कृतता का अनुभव हो सकता है। आकाक्षां है ये तो पक्का है, लेकिन आकांक्षा नरक की भी हो सकती है और स्वर्ग की भी हो सकती है। प्यास अंधकार की भी हो सकती है और प्रकाश की भी। अभिप्सा सत्य की भी हो सकती है और असत्य की भी। चाहे हमे पता हो और चाहे पता न हो, अगर हमने अंधकार से रिक्तता को भरना चाहा तो हम दिन प्रतिदिन अशांत होते चले जाएंगे। अगर हमने जीवन में असत्य को, गलत को चाहा, तो जीवन मे कृत–कृतता का आना असंभव है। शांति छाया है सम्यक चाह की। क्यों कि सम्यक चाह से ही शांति पैदा होती है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक बीज है जो अंकुरित होना चाहता है। अंकुरित हो जाए तो जीवन आनंद से भर सकता है, अंकुरित न हो पाए तो जीवन और ज्यादा अशांति और पीडा से भर जायेगा। सभी नदियां सागर होना चाहती है। सागर तक पहुंच जाए, तो शांत हो जाती है और यदि न पहुंच पाए, भटक जाए मरूस्थलों में, तो अशांत ही रहती है क्यों कि उनकी सागर से मिलने की प्यास अधूरी ही रह जाती है। असत्य से सत्य की तरफ! मरण से अमरत्त्व की। और यही सारी मनुष्यता के प्राणों की आकांक्षा है, यही जीवन सार है। और यदि हम नित्य प्रतिदिन जीवन में शांत होते जा रहे है, तो समझना कि हमारी चाह सम्यक है। और अगर हम जीवन मे और अशांत होते चले जा रहे है, तो जानना चाहिए कि हम गलत दिशा में जा रहे है, चाह जीवन के विपरीत है।

यह भी सत्य है कि, सम्यक चाह के रास्ते में बहुत मुसिबते है क्योंकि भटकने के मार्ग बहुत है लेकिन यदि एक छोटा बच्चा चलना शुरू करता है। अगर वह कहे कि मुझे बिलकुल ऐसी तरकीब चाहिए, सौ प्रतिशत गारंटी की कि गिरूं न.तो वह कभी चल ही नही पायेगा। इसलिए चलने के लिए गिरना तो पड़ेगा। गिरने के सिवाए चलना सीखने का कोई उपाय नहीं। अब दो पहियों की साइकिल, सीधी चलती है, चमत्कार है। गिरना तो बिलकुल नियमानुसार है; नहीं गिरना, चमत्कार है। मगर दो.चार बार गिर कर हमको खयाल आने लगता है। अब वह खयाल ऐसा है कि कोई दूसरा कितना ही जिंदगी से साइकिल चला रहा हो तो भी हमे दे नहीं सकता। कोई हमे दे नहीं सकता

कि यह लो मैं तुम्हें अपनी समझ दिए देता हूं। वह कितना ही समझा दे, फिर भी हमे गिरना ही पड़ेगा। इसलिए जो आदमी ये कहे कि मेरे बताने से तुम्हे जीवन में कृत. कृत्यता का अनुभव हो जाएगा वो बिल्कुल झूठ बोल रहा है। जब तक हम खुद गिरकर संभालना नही सीखते तब तक कोई भी गुरु, महात्मा, साधु संत, महापुरुष हमे अनुभव नही दे सकता। बस वह इतनी ही गारंटी दे सकता है कि जरूर गिरोगे; मगर गिर–गिर कर सीखोगे। कई बार गलत रास्तों पर भटक जाओगे। लेकिन अगर हम अपने ही कारण भटके है तो कभी न कभी लौट आएंगे लेकिन यदि दूसरे के कारण भटके तो कभी न लौट सकेंगे। क्योंकि जो आदमी दूसरे के पीछे चल रहा है उसे कभी पता ही नहीं चलता है कि मैं ठीक जा रहा हूं कि गलत जा रहा हूं। जैसे कि हम किसी साइकिल सवार के पीछे कैरियर पर बैठे हुए हो, हमे थोड़े ही बैलेंस बनाना आएगा! हालांकि हम भी साइकिल पर ही सवार है। मगर संतुलन नहीं आएगा। और असली बात संतुलन है। मनोवैज्ञानिक कहते है कि जिन लोगों से आपको कोई बड़ा काम करवाना हो उनके भीतर जो ़क्षमता है उसके प्रति उनको जगाना जरूरी है। इसलिए वे जो हैं, इस पर ध्यान देने की ज्यादा जरूरत नही हैय वे जो हो सकते हैं, इस पर ध्यान देने की ज्यादा जरूरत है। यह ठीक है कि आदमी बुरा है, आदमी बेईमान है। कौन आदमी बुरा नहीं? कौन आदमी बेईमान नहीं? लेकिन वह आदमी क्या हो सकता है, सवाल यह है। वह क्या है, यह सवाल ही नहीं है। हमें उसके भीतर उसको ढूंढना है जो वह हो सकता है। वह जो उसकी वास्तविक क्षमता है। छोटे से छोटे आदमी के भीतर भी चमत्कारी क्षमता घटित हो सकती है। एक दफा हम उसे पुकारें और उसकी आत्मा में जो सोया है उसे निकट लाएं, उसमें विश्वास जगायें। उसके लिए चुनौती खड़ी करें। उसके भीतर बहुत कुछ निकल सकता है। और एक तरफ यह भी सही है कि एक बड़े से बड़े आदमी को हम निराश कर सकते हैं। एक श्रेष्ठतम व्यक्ति को हम कह सकते हैं कि तुम कुछ भी नहीं हो। और अगर दस–पांच दफा सब तरफ से उसे यही सुनाई पड़े कि वह कुछ भी नहीं है, तो निश्चित मानना वह कुछ भी नहीं हो जाएगा।

हमे, अनाज, पानी और हवा भी पचाना पड़ता है। अगर हम ज्यादा खाना खा ले, या ऐसा खाना खा ले, अशुद्ध हवा या पानी ले ले, जो डाइजेस्ट न कर सके तो, अपच हो सकता हैं। और हम बीमार हो सकते है। इसी तरह हम जो दिन भर सूचनाएं इकठ्ठा करते है उन्हें भी पचाना पड़ता है। अगर ये सूचनाएं न पचे तो ये भ्रम पैदा होता है कि मै दिन प्रतिदिन ज्ञानी होता जा रहा हूँ। और हमारा अंहकार रोज बढ़ता चला जाता है। लेकिन मैं कहूं तो इन सूचनाओ का ज्ञान से कुछ भी लेना देना नही है।

क्योंकि अनुभव के बिना ज्ञान अधुरा है आपितु अज्ञान है। ये सूचनाएं तो दिमाग पर बस बोझ जैसी है। सूचनाये जब अनुभव बनती है तभी हम उसको ज्ञान कहते सकते है। ये चार चीजे–अनाज, पानी, हवा और सूचनाये पचाना जिसको आ जाता है, वो ही ज्ञानी पुरुष है। वरना सब एक तरह का मानसिक बोझा है।

कई लोग मुझसे पूछते है, क्या आप दूसरो को बदलना चाहते है? जबकि अध्यात्म तो स्व–रूपांतरण कि प्रक्रिया है तो कहना चाहना चाहता हूँ कि मैं किसी को बदलने के लिए आतुर नही हूँ, कोई बदले या न बदले किसी के जीवन मे कोई परिवर्तन आये, या न आये। इससे मुझे कुछ ज्यादा लेना देना नही है लेकिन फिर भी मैं कोशिस कर रहा हूँ क्यों कि मुझे खुद को बदलना है क्योंकि मुझे खुद जगाना है क्योंकि उनको बदलने की फिक्र में मैं अपने को बदलने का और भी तीव्रता से आयोजन शुरू करता हूँ। क्योंकि जब भी मैं किसी दूसरे व्यक्ति को सुधारने की कोशिश करता हूँ तो मुझे हर बार और भी बेहतरीन ढंग से ये साफ दिखाई पडने लगता है कि उसे सुधारने के पहले मुझे खुद को सुधार लेना जरूरी है। अगर हम किसी को सुधारने में नहीं लगते तो खुद को सुधारने की जरूरत का भी एहसास नहीं होता है। अगर हर व्यक्ति एक बुरे आदमी को सुधारने में लग जाए, भला वह बुरा आदमी सुधरे या न सुधरे, लेकिन आखिर में वह व्यक्ति पाएगा कि उसको सुधारने की कोशिश में मैं सुधर गया। एक छोटा बच्चा पूरे परिवार को बदल सकता है। क्योंकि बाप को मुश्किल हो जाता है–कैसे इस बच्चे के सामने सिगरेट पीयें? अगर बाप को बच्चे से प्रेम है तो सिगरेट फेंक देगा। अगर बाप को बच्चे से प्रेम है तो झूठ बोलना बंद कर देगा। अगर हम किसी एक आदमी के भी जीवन को रूपांतरित करने के खयाल से भर जाए तो अनिवार्य हो जाएगा कि पहले हमें अपने को रुपान्तरित करना होगा। अन्यथा हम बदलेगे कैसे? दूसरे को बदलने की कोशिश अपने को बदलने की बड़ी खूबसूरत कीमिया है। दूसरे को बदलने की चेष्टा स्वयं के लिए बड़ी से बड़ी साधना है। इसलिए मैं इसकी फिक्र नही करता कि दूसरे कब सुधरेंगे, कब दूसरों का रूपांतरण होगा। बस मेरे पास जो भी छोटा–मोटा है, जो भी टूट फूटा है मैं उसी को बांटता रहता हूँ। हमारी खुद की पहचान के लिए भी हमे दूसरे दर्पण की जरूरत पड़ती है। अकेले में हम कुछ भी न समझ पाएंगे कि हम कौन है? क्या है?

रुपान्तरण एक बहुत साहसिक कृत है, एक बार एक महिला ने रमणा महृषि से पूछा, भगवान कई लोग जगत में बहुत ही मृदू भाषी, सरल स्वभाव और परिवार की देखभाल करने वाले होतें है। परन्तु जब उनसें आध्यात्म की बात करें तो वे यह बातें सुनना ही नही चाहते। ऐसा क्यो? महृषि कहते है, आध्यात्मिक जगत में मनुष की जो मूलभूत गलत अवधारणायें है, उन पर प्रहार होता है। उसने अपने पूरे जीवन मे जिसकों

सत्य माना हैं और उसी में जिया है। जब उसे जब बतायां जाता है कि तुम देह नही हो तों उसे लगता है। बाबा जी ये क्या बोल रहे है? यह कैसे हो सकता हैं? इसीलिए वह यह सब सुनना ही नही चाहता है। संसार मे दो जगह आदमी स्वस्थ होने के लिए जाता है। (1) अस्पताल (2) जिम। क्या जितनी भीड़ अस्पताल में होती है उतनी भीड़ जिम में भी होती है, नही। क्योंकि अस्पताल में वो लोग जाते है। जो बीमार है और ठीक होना चाहते है। और जिम में वे लोग जाते है। जो स्वस्थ है और उससे भी ज्यादा बनना चाहते है। उसी प्रकार जो मनुष घर को लेकर, पति–पत्नी को लेकर, बच्चों को लेकर दुखी हो जातें है। वही मंन्दिरों मे अपनी मनोकामना पूर्ण करने जाता है। परन्तु जो स्वस्थ है। जिसे कोई इच्छा नही है, वही अपने को जानने के लिए सतसंग या महापुरुषो की शरण में आते है। यह आध्यात्म बलहीन लोंगो के लिए नही है। बलहीन लोंगो से तात्पर्या है, जो अपनी गलत धारणाओं को बदलना नही चाहते।

इन्ही बातो का ख्याल लेते हुए ये पुस्तक एक छोटा सा प्रयास है, मनुष्य की गलत धारणाओं का तोड़ने का। इसमें आपके बनी–बनाई धारणाओं पर प्रहार होगा, आपको शायद मेरी बाते थोड़ी कठोर लगे लेकिन ये जरूरी है। नींद से जगाने के लिए आदमी को हिलाना बहुत जरूरी है। कभी यदि शरीर में फोड़ा जाये तो उसमे चीरा लगाना जरूरी हो जाता है।

(रमेश सिंह पाल)

विषय–वस्तु

क्र.	विषय	पृष्ठ
	आपका प्रेम एवं आशीर्वाद	v
	प्रस्तावना	viii
अध्याय. 1	तोड़ो मन के जाल को	1
अध्याय. 2	कचरा मत बटोरो	10
अध्याय. 3	मन की उपज अधर्म है	20
अध्याय. 4	तुम अपवाद नाह हो	30
अध्याय. 5	नरक क्या है?	37
अध्याय. 6	आध्यात्मिक होना मतलब क्या?	43
अध्याय. 7	देह साधन है साध्य नहीं	54
अध्याय. 8	कर क्या रहे हो? इतना आडंबर क्यों?	64
अध्याय. 9	प्रेम रोग नहीं इलाज है	72
अध्याय. 10	दुःख को भुलावा सुख नहीं है	78
अध्याय. 11	क्या वाकई हम जीवन जी रहे है?	84
अध्याय. 12	दृष्टि को बदलना है सृष्टि को नहीं	92
अध्याय. 13	भागना नहीं है जगाना है	101
अध्याय. 14	सूचनाओं का संग्रह ज्ञान नहीं है	107
अध्याय. 15	इतने अशांत क्यों हो?	114
अध्याय. 16	क्या पूर्ण स्वतन्त्र हो?	122
अध्याय. 17	आत्म निरीक्षण की शक्ति विवेक है	133
अध्याय. 18	उपसंहार	142

(अध्याय - 1)
तोड़ो मन के जाल को

ये तो हम सभी लोग मानते है कि हमारे मन में निरन्तर विचार चल रहे हैं। और जो कहे नही चल रहे है अभी उसे मन और विचार का कुछ भी पता नही। क्यो कि हमारे अन्दर व्यर्थ की बकवास निरन्तर चल रही है। यह मन एक बन्दर की तरह है। यह कभी शांत होकर बैठ ही नहीं सकता। डार्विन ने खोज की कि बन्दर से ही मनुष्य का विकास हुआ है, परन्तु हमने उसे नही माना, लेकिन हम सदा से इस बात के प्रति सजग रहे हैं, कि यदि मनुष्य बन्दर से विकसित नहीं भी हुआ हो, फिर भी निश्चित रूप से उसका मन तो बन्दर के मन से ही विकसित हुआ है। वह ठीक बन्दर जैसा ही है–वैसे ही उछलता, कूदता और किकियाता रहता है, कुछ–न–कुछ काम निरन्तर करता ही रहता है, और कभी शांत बैठता ही नहीं। आइये इस मन की प्रकृति के बारे में और समझने का प्रयास करते है।

दोस्तो मन के कुछ नियम हैं, उनमें एक नियम यह भी है कि जो चीज उपलब्ध हो जाए, मन उसे भूलने लगता है! जो मिल जाए, उसकी विस्मृति होने लगती है। जो पास हो, उसे भूल जाने की संभावना बढ़ने लगती है! मन उसकी तो याद करता है, जो दूर हो। जो मिला न हो, ओर यदि वो मिल जाए, मन उसे धीरे–धीरे भूलने लगता है! मन की आदत सदा भविष्य में होने की है, वर्तमान में होने की नहीं! मन के इस नियम को समझना और तोड़ने के लिए ही पूरी ध्यान और साधना की पद्वति है। ध्यान का अर्थ हैः जो है, उसके प्रति जागो–जो नहीं है, उसकी फिक्र छोड़ो! और मन का नियम यह है–जो है, उसके प्रति सोए रहो, जो नहीं है, उसके प्रति जागते रहो! मन का सारा खेल अभाव के साथ संबंध बनाने का है! यदि हमारे पास लाख रुपए हैं तो मन उनको नहीं देखता, जो दस लाख हमारे पास नहीं हैं, उनका हिसाब लगाता रहता है कि कैसे मिलें? जब हमारे पास लाख न थे, दस हजार ही थे, तब वह लाख की सोचता था! अब लाख हैं, वह दस लाख की सोचता है! जब हमारे पास दस हजार थे, सोचा था, लाख होंगे तो बड़े आनंदित होओगे! लेकिन अब हम बिलकुल आनंदित नहीं है! लाख हमारे पास हैं, अब मन कहता है, दस लाख होंगे, तब आनंद होगा ! दस लाख भी हो जाएं, फिर शायद बात करोड़ तक पहुच जाएगी। लेकिन फिर भी मन आनंदित होने वाला नहीं है! दोस्तो हमारा पूरा जीवन मन का खेल है मन खेलता है और हम कटपुतली की

तरह इसके आगे नाचते रहते है! मन ऐसा ही है, जैसे जमीन को छूता हुआ क्षितिज! वह कहीं है नहीं, सिर्फ दिखाई पड़ता है! हम आगे बढ़े, वह और भी आगे बढ़ गया ! और जहां पहुंच जाते है, मन वहा से हट जाता है! मन आगे दौड़ने लगता है! कहीं और जाता है! मन सदा हमसे आगे दौड़ता रहता है! हम जहां है, वहां कभी नहीं होता! हम मंदिर में हो तो, वह दुकान में है! हम दुकान में हो, तो वह मंदिर में! हम बाजार में हो तो वह हिमालय की सोचता है! हम हिमालय पहुंच जाए, तो वह बाजार की सोचने लगता है। मन के इस खेल को समझो!!

मनुष्य का मन बड़ा विरोधाभासी है, इसलिये संसार में भी इतना विरोधाभास दिखाई पड़ता है। यहाँ हम कुछ चाहते हैं, कुछ दिखलाते है। कुछ दिखलाते हैं, कुछ और चाहते हैं। अगर हम अपने मन को देखे तो बड़े चकित हो जायगे कि मन ने कैसे सूक्ष्म जाल बना रखे हैं। हम बाजार में निकलते इस ढंग से हो कि प्रत्येक व्यक्ति हमारी ओर आकर्षित हो जाए, और अगर कोई आकर्षित हो जाता है तो हम नाराज हो जाते है। आयोजन उसी का करते है, फिर जब सफलता मिल जाए तब हम बड़े बेचैन होते है। अगर कोई रास्ते पर हमे देखे न तो हमे अपना सारा सौंदर्य प्रसाधन बेकार लगने लगता है फिर हम उदास होकर घर आते है। मामला क्या है? कि लोग मुझमें उत्सुक नही है? दूसरे की उत्सुकता अहंकार का पोषण है। हमे अच्छा लगता है जब दूसरे लोग हममे उत्सुक होते हैं, हम मूल्यवान प्रतीत होते है। जिस मनुष्य में स्वयं के भीतर अपना कोई मूल्य नही है वे इसी मूल्य का अपने लिए धोखा पैदा करते हैं। दूसरे लोग उत्सुक हैं, जरूर मूल्यवान होना चाहिए। इतने लोगों ने मेरी तरफ आंख उठाकर देखा, जरूर मुझमें कुछ खूबी होनी चाहिए। हमे खुद अपनी खूबी का कुछ पता नहीं है, और देखा जाये तो कोई खूबी है भी नहीं। बस मन एक झूठा भरोसा दिलाता है कि अगर खूबी न होती तो इतने लोग मुझमे उत्सुक क्यों होते? जरूर मुझे सुंदर होना ही चाहिए, नहीं तो इतने लोग उत्सुक क्यों होते। हमे अपने सौंदर्य पर खुद तो कोई आस्था नहीं है, हम दूसरों के मंतव्य इकट्ठे करते है। यह पागलपन नही तो क्या है? यह मन की एक विक्षिप्त अवस्था है।

मनुष्य मन की दो अवस्थाये सम्भवतः हो सकेती हैं। एक है, विक्षिप्तता और दूसरी है, विमुक्तता। मन की केवल तब जरूरत है, जब कोई सवाल सामने हो, उसको हल करना हो, तब मन चले तो ठीक है। लेकिन न कोई सवाल है, न कोई बात सामने है। बैठे हैं, और मन की टांगें चल रही हैं। यह विक्षिप्तता है, यह पागलपन है। दरअसल मन का स्वभाव ही पागलपन है। मन का अर्थ है, मैडनेस। वह पागलपन है। और जब कोई मन से मुक्त होता है, तो स्वस्थ होता है, तो विमुक्त होता है। यह अवस्था विमुक्तता है। लेकिन साधारणतरू हमारा मन चलता ही रहता है। चाहें भी रोकना, तो रुकता

नहीं। कोशिश करके देखें। रोकना चाहेंगे, तो और भी नहीं रुकेगा। और जोर से चलेगा। और सिद्ध करके बता देगा कि तुम मालिक नहीं हो, मालिक मैं हूं। छोटी–सी कोई बात रोकने की कोशिश करें। और वही–वही बात बार–बार मन में आनी शुरू हो जाएगी। हम एक काम के लिए घर से निकले और कसम खाये कि शाम तक बंदर शब्द को अपनी जुबान पर नही लाऊंगा। यकीन मानिए उस दिन हर एक मिनट बाद बंदर शब्द हमारी जुबान पर आ जायेगा। और उस दिन हमको पूरे दिन में कई बंदर देखने को भी मिल जाएंगे। मन का यह स्वभाव है कि वह हमेशा सिद्ध करता है कि हम मालिक नहीं हैं, वह मालिक है। और जब तक किसी आदमी का मन मालिक है, वह आदमी विक्षिप्त हैं। जिस दिन हम मालिक हों, उसी दिन हम स्वस्थ की श्रेणी में आ सकते है।

जीवन तो कोरा कागज है, हम इस पर जो लिखते है वही पढ़ते है। इस पर गालियां भी लिख सकते है, गीत लिख सकते है। क्यों कि गालियां भी उसी वर्णमाला से बनती हैं जिससे गीत बनते हैं, वर्णमाला तो निरपेक्ष है, निष्पक्ष है। जिस कागज पर लिखते है वह भी निरपेक्ष, निष्पक्ष है। जिस कलम से लिखते है, वह भी निरपेक्ष, वह भी निष्पक्ष। सब दांव हमारे हाथ में है। हमने जीवन शायद सही ढंग से जीया ही नही, इसलिए व्यर्थ मालूम होता है। यह हम मानने को राजी नही होते कि हमारे जीने में ही कुछ भूल है। यह बड़े मजे की बात है! हम लोग अक्सर कहते हैं, जीवन व्यर्थ है। यह नहीं कहते कि हमारे जीने का ढंग व्यर्थ है! और हमारे तथाकथित साधु–संत, महात्मा भी हमको यही समझाते हैं–जीवन व्यर्थ है। मैं मानता हूं: जीवन न तो सार्थक है, न व्यर्थ; जीवन तो निष्पक्ष है। जीवन तो कोरा कागज है। चाहो तो हम पर इंद्रधनुष बनाओ और चाहो तो हम पर कीचड़ फेर दो। कुशलता चाहिए। अगर हमें जीवन व्यर्थ लगता है है तो उसका अर्थ यह है कि हमने जीवन को जीने की कला नहीं सीखीय उसका अर्थ है कि हम यह मान कर चले थे कि जीवन कोई कोई रेडीमेट चीज है। नही! जीवन कोई रेडीमेंट चीज नही है।

हमारा मन हमें बुद्धिमत्ता नहीं दे सकता है। हो सकता है कि यह अजीब लगे लेकिन यह सच है, हमारा मन बुद्धिमत्ता (Intelligent) नहीं है। मन बौद्धिक (Intellactual) हो सकता है, जो कि बुद्धिमत्ता (Intelligent) का बहुत ही गरीब विकल्प है। बौद्धिकता (Intellectuality) यांत्रिक है। तुम बहुत बड़े विद्वान बन सकते हो, बहुत महान प्रोफेसर बन सकते हो लेकिन तुम बस शब्दों के साथ खेलते हो जो कि सभी उधार के हैं, विचारों को व्यवस्थित और पुनः व्यवस्थित करते हो, उनमें से कोई भी तुम्हारे नहीं है। बौद्धिकता पूरी तरह से दीवालिया है। उसके पास अपना कुछ भी नहीं

है, सब कुछ उधार लिया हुआ है। और बुद्धिमत्ता और बौद्धिकता में यही फर्क है। बुद्धिमत्ता की अपनी एक दृष्टि होती है, अपनी सोच होती है। बातों में, समस्याओं में, देखने की एक क्षमता होती है। बुद्धिमत्ता हमारी जन्मजात गुणवत्ता है। और बौद्धिकता बाहर से, मा बाप से, समाज से, स्कूल से, कॉलेज से, यूनिवर्सिटी से आई हुई हैं।

अगर मेरी खुद की जेब मे चने है, तो मैं दूसरे को बादाम नही बांट सकता। केवल वही चीज एक व्यक्ति दूसरे को दे सकता है जो उसके पास है। अगर मेरी जेब मे चने है तो मैं दूसरे को बादाम नही बांट सकता। जो व्यक्ति खुद आनंद से जिन्दगी जी नहीं पा रहा है, वह ठीक से दूसरे को भी नही जीने देगा। तुम मुस्कुराओगे तो उसे पीड़ा होगी। वह तुम्हारी मुस्कुराहट पर भी जहर डाल देगा। वह सारे जगत को उदासी और मरघट से भर देना चाहेगा। लेकिन जो व्यक्ति जीवन को बेशर्त जी रहा है, जिसने जीवन मे आंनद को जाना, वही दूसरे को आनंद बांट सकता है। जो स्वयं मुक्त है। वही दूसरों को भी मुक्त कर सकता है। वही दुसरो से प्रेम कर सकता है। जिसने महाजीवन को जाना है; वही केवल हमें जीवन देने को उत्सुक हो सकता है। जो खुद अपने को मार रहे हैं, वे आत्मघाती हैं। वे हमें भी मार डालना चाहेंगे। जो खुद कुछ नया नहीं कर सकता है, वह हमारी भी निंदा करेगा। जो खुद कोई, सकारात्मक काम नहीं कर सकता है, वह सब तोड़ देगा। और उनका जाल बड़ा है, और पुराना है। और उनके जाल के बाहर आना बड़ा ही मुश्किल है। उस जाल से बाहर आने के लिए, हमें मन के मायाजाल को तोड़ना होगा, मन के प्रति सचेत होना पड़ेगा।

साधारणतः लोग समझते हैं, माया उसे कहते हैं जो नहीं है लेकिन दिखाई पडता है। इसलिए अंगेजी में उसका अनुवाद लोग 'इलूजन' करते हैं। यह अनुवाद गलत है। माया का अर्थ यह नहीं है। माया का अर्थ सम्मोहन है, 'हिप्रोसिस'। माया का अर्थ है, मनुष्य के मन की ऐसी क्षमता कि वह जो भी मान ले, वैसा ही इसके मन के समक्ष होना शुरू हो जाता है। उसकी मान्यता ही यथार्थ बन जाती है। वह जैसा स्वीकार कर ले, जैसा अंगीकार कर ले, वैसा ही घटना होना शुरू हो जाता है। माया मनुष्य के मन की एक क्षमता है और इसी का बड़ा विस्तार पूरे जगत में दिखायी पड़ता है। सारे मनुष्य मिलकर सारे जगत में जो सम्मोहन की अवस्था पैदा करते हैं, वह पूरे जगत की माया बन जाता है। जैसे एक आदमी पागल है तो एक आदमी पागल है। अगर पूरा समूह पागल हो जाए तो वह समूह जो पैदा करेगा वह पूरे ही जगत को पागल कर देगा। माया, मन की सम्मोहित होने की क्षमता का नाम है। सम्मोहन का अर्थ है, किसी चीज के यथार्त रूप का मन के पीछे छिप जाना और जो मन देखना चाहता है उसका उभर आना। जब इस संसार और हमारे बीच मे मन आ जाता है वही माया का कार्य

शुरू हो जाता है। फिर मनुष्य माया के वशीभूत होकर शरीर को ही सब कुछ समझ लेता है, और सब तरह के कर्मों को करता है।

माया से ग्रसित यही मन विभिन्न प्रकार की आकांक्षाओं को जन्म देता है। इस संसार में मनुष्य अपनी आकांक्षाओं के अनुपात में गरीब होता है और उसी अनुपात में दुखी होता है। यदि हम सोचते है सुंदरतम देह होनी चाहिए। तो उसी वक्त हम कुरुप हो गए। धनी होना चाहिए, तो निर्धन हो गए। महल होना चाहिए, तो जिस मकान में रहते है थे वह झोपड़ा हो गया। बेटा अलबर्ट आइंस्टीन जैसा बुद्धिमान होना चाहिए, अब वो बेटा बुध्दू हो गया। ऐसी स्थिती में हम बस दुख ही दुख में घिरे चले जायेंगे। ये तो मैंने एक छोटी सी लिस्ट बताई, हममें से हर कोई अपनी सूची बना कर देख सकता है। थोड़ी देर के लिए जरा सोचें मेरा बेटा मेरा बेटा है, अलबर्ट आइंस्टीन से क्या लेना–देना? और अगर हम किसी से तुलना न करे तो आशा भी जन्म नही लेती। तुलना आशा की छाया है–तुलना नही है तो फिर हमारा बेटा जैसा है वैसा है। जरा भी दुख देने वाला नहीं है। कोई कारण दुख का नहीं रह गया। यदि किसी के पास दस हजार रूपये हैं, तो वह दस हजार में भी सुख का अनुभव कर सकता है क्योंकि ऐसे भी लोग है जिनके पास दस रुपये भी नहीं हैं। और जिनके पास दस रुपये नहीं हैं, वे सोचते हैं दस हजार हो जाएं तो सुखी हो जाएंगे। और जिसके पास दस हजार हैं वो सोचता है दस अरब हो जाए तो हम सुखी हो जाएंगे–लेकिन जरा 10 अरब वाले से उसकी आँखों मे आंखे डाल कर पूछो की क्या वो सुखी है। लेकिन इसका मतलब यह यह बिल्कुल नही है कि सबकुछ छोड़ दो। कर्म करना छोड़ दे। क्यों कि जिन्होंने धन छोड़ा उन्होंने कुछ और पकड़ लिया। उसने धन के बदले स्वर्ग पकड़ लिया। परमात्मा के बगल की सीट बुक करने का जुगाड़ लगा रहे है।

सारी जिंदगी दुख उठा–उठा कर, नरक झेल–झेल कर, भीख मांग–मांग कर, चोरी करके, बेईमानी करके, सब तरह की जालसाजियां करके किसी तरह यदि हम महल में पहुंच जाये, तो भी हम सुखी न हो सकेगे। क्यों कि मन उसी को भूल जाता है जो मिल जाता है। जो नहीं मिलता उसी को याद रखता है। यही मन का स्वभाव है। वह कभी भी नहीं कहता कि बस, पर्याप्त। पर्याप्त शब्द मन को आता ही नहीं। वह उसकी डिक्शनरी में नहीं है। हमने देखा है कि कुछ किसान अपने खेतों में झूठा आदमी जैसा पुतला बनाकर खड़ा कर देते हैं। उसे कुरता पहना देते हैं, हंडिया लटका देते हैं, उसका मुंह बना देते हैं। ताकि जंगली जानवर उस झूठे आदमी को देखकर भाग जाएं। पक्षी–पक्षी खेत में आने से डरे। एक दिन एक शहरी आदमी जिसमे ऐसा आदमी पहले कभी नही देखा था उस झूठे आदमी के पास से निकलता था। तो उस शहरी आदमी ने उस झूठे आदमी को पूछा कि दोस्त! मैंने सुना है तुम सदा यही खड़े रहते हो? धूप

आती है, वर्षा आती है, सर्दियां आती हैं रात आती है, अंधेरा हो जाता है–लेकिन तुम यही खड़े रहते हो। क्या तुम ऊबते नहीं, घबराते नहीं, परेशान नहीं होते? वह झूठा आदमी उस शहरी आदमी की बातें सुनकर बहुत हंसने लगा। उसने कहा, परेशान! परेशान मैं कभी नहीं होता, दूसरों को डराने में इतना मजा आता है कि उसके आगे मुझे धूप–बारिश, सर्दी–गर्मी, दिन–रात किसी का भी तो पता नही चलता। मुझे दूसरों को डराने में बहुत मजा आता है; दूसरों को प्रभावित देखकर, भयभीत देखकर बहुत मजा आता है। 'दूसरों की आंखों में सच्चा दिखायी पड़ता हूं,–बस बात खत्म हो जाती है। पक्षी डरते हैं कि मैं सच्चा आदमी हूं। जंगली जानवर भय खाते हैं कि मैं सच्चा आदमी हूं। उनकी आंखों में देखकर कि मैं सच्चा हूं बहुत मजा आता है! उस झूठे आदमी की बातें सुनकर वो शहरी आदमी बोला कि "बड़े आश्र्चर्य की बात है। तुम जैसा कहते हो, वैसी हालत मेरी भी है। मैं भी दूसरों की आंखों में देखता हूं कि मैं क्या हूं और उसी से आनंद लेता चला जाता हूं! दूसरे जब मेरे पद, पावर को देखकर मुझसे डरते है तो मुझे भी बहुत मजा आता है। मैं भी लोगो की गर्दन दबोचने के लिए दिन–रात एक किये रहता हूँ। तुम तो फिर भी एक जगह खड़े हो। लेकिन मैं तो हमेशा कही ठहरता ही नही बस दिन रात और पैसा, ओर पावर इसी में लगा हूँ। यह सुनकर वह झूठा आदमी हंसने लगा और उसने कहा, "तब फिर मैं समझ गया कि तुम भी एक झूठे आदमी हो। झूठे आदमी की एक पहचान हैः वह हमेशा दूसरे को डरना चाहता है। अपने पद से, अपने रुतबे से, अपनी शक्ति से।

ऐसा आदमी कभी स्वयं को नही देखता उसकी दृष्टि दूसरे को ही देखती है। लेकिन एक बात मैं और बता दूँ कि जो तुम्हारे आगे झुकते है, तुमसे डरते है वो तुम जैसे ही झूठे है। ये मत सोच लेना कि उनका तुमसे कुछ लेना देना है। कि वो तुमसे प्रेम करते है। इसलिए तुम्हारे आगे झुकते है। उनका झुकना उनके डर के कारण है। आज ही यदि तुम्हरी शक्ति चली जाए। तुम्हारी सच्चाई उनके सामने आ जाये यही डरने वाले लोग तुम्हे उखाड़ फेकेंगे। इसलिए जितने झूठे तुम हो उतने ही झूठे दूसरे लोग भी है। लेकिन दोनो ही सच्चे होने का नाटक करते रहते है। दोनो एक दूसरे के मन मे भ्रम पैदा करते हैं और कुछ नही।

आशा संसार का द्वार है और आशा का टूट जाना, अध्यात्म का द्वार है। आशा का टूट जाना निराशा नहीं है। निराशा तो आशा का हारना है, टूटना नहीं। निराशा में तो आशा जिंदा रहती है। अभी निराश हो गए, फिर आशा से भर जाओगे। निराशा तो आशा का ही हारा हुआ पहलू है। इसलिए जितनी हम आशा करेगे, उतनी ज्यादा निराशा होती है, क्योंकि उतनी ही हार मिलती है, उतना ही विषाद मिलता है, उतना

ही संताप मिलता है। फिर निराशा से नई आशा पैदा होती है। और यह खेल दिन–रात की तरह चलता रहता है। आशा टूट जाए तो न आशा होती है, न निराशा होती है। और तभी हम शांत होते है। आशा और निराशा के झंझावात में हमारी चेतना की लौ कंपती रहती है। जब न आशा रहती, न निराशा तब कही स्थितप्रज्ञता उपलब्ध होती है; उस स्थिरता में ही परम धन्यता है।

विचार का जन्म भाषा से होता हैं, अगर हम हमारे, भाव और अनुभव को भाषा न दे तो विचार उत्पन नहीं होगा। विचार का जन्म ही नहीं होगा। उदाहरण के लिए, हम पूनम का चांद देखे, बहुत सुंदर है, सिर्फ उसका सौंदर्य देखते रहे, अनुभव करते रहे, लेकिन उसको कोई भाषा न दे, तो विचार उत्पन नहीं होगा। लेकिन जैसे ही हम उसको भाषा दे की चांद कितना सुन्दर है, जैसे ही बोल दिया बहुत सुंदर है विचार बन गया। अगर हम कुछ न बोले, कोई भाषा न दे, तो कोई भी विचार का जन्म नहीं होगा। ऐसे ही हम किसी के साथ बात करते समय, उसको सिर्फ सुने, और देखते ही रहे, उनकी उपस्थिति महसूस करते रहे। लेकिन उसके भाव को, कुछ भी एनालिसिस न करे, उससे तादात्म्य न करें, और उसको कोई भाषा न दे, तो किसी के साथ संवाद से भी विचार का जन्म नहीं होगा। जब तक हम कोई भी भाव, या अनुभव को भाषा न दे, वहां तक कोई विचार का जन्म नहीं होता हैं। तो जिन्हे विचार से मुक्त होना है, उसे पहले भाव और अनुभव को भाषा देने से मुक्त होना पड़ेगा। कृष्णमूर्ति इस भाषा मुक्त स्थिति को ही ध्यान कहते हैं और अगर हम नए विचार को जन्म न दे, तो हम धीरे धीरे विचार से मुक्त हो सकते हैं।

कभी–कभी मन को कहना सीखो कि बस, अब तुम चुप हो जाओ। मुझे घड़ी भर हृदय के साथ जी लेने दो। इतना मैं विश्वास दिलाता हूं कि यदि हम मन को तेईस घंटे दे और हृदय को यदि एक घंटा भी दिया तो जीत हृदय की होने वाली है। क्योंकि जीवन के सारे गहरे अनुभव हृदय से होते हैं, बुद्धि से नहीं होते। और सोचना बुद्धि से होता है। और बुद्धि और हृदय का कोई मेल नहीं बैठता तो बुद्धि तुम्हें पागल कहेगी कि यह क्या पागलपन है, अकेले बैठे–बैठे मुस्कुरा रहे हो। चलो, किसी मनोवैज्ञानिक को दिखा आओ। यह दुनिया बहुत अजीब है। यहां अगर हम कुछ पल शांति से बैठ जाय और कुछ भी न करें तो हर आदमी टोकेगा। क्यों जी, क्यों फिजूल बैठे हुए हो? शर्म नहीं आती? दुनिया मरी जा रही है और तुम बैठे हो। हजार काम करने को पड़े हैं और तुम बैठे हो। अगर तुम बैठे–बैठे गुनगुना रहे हो तो लोग कहेंगे कि जिंदगी बरबाद कर रहे हो। जैसे कि उन्हें जिंदगी मिल गई। बीड़ी पीओ! दम मारो दम! बैठे–बैठे मुस्कुरा रहे हो। किसी ने देख लिया तो बेकार ही बदनामी होगी। अंग्रेजी

कहावत है, it is better to do something than nothing और मैं तुमसे यह कह रहा हूं, it is better to do nothing than wrong thing। चौबीस घंटे कुछ न करो, यह नहीं कह रहा हूं। रोटी तो कमानी होगी, कपड़े तो कमाने होंगे। लेकिन घंटा भर तो अपने लिए निकाल सकते है। जब हम मन को कह दे कि बस, अब तुम चुप हो जाओ। अब मुझे घड़ीभर जी लेने दो।

इस दुनिया के चक्कर के ज्यादा मत पडो क्योंकि अंधे को कोई तर्क देने की जरूरत नहीं कि प्रकाश है; उससे इतनी ही प्रार्थना करनी है कि आख खोल ले। और यदि वह कहे कि, अभी आख कैसे खोलूं! भीतर बहुत सपने देख रहा हूं; बड़ा मजेदार सपना चल रहा है। तो उससे बस इतना ही कहना कि खूब देख ले। इतनी गौर से सपने को देख, समझ और इतना इस सपने को भोग कि तुझे खुद ही दिखाई पड़ जाए कि यह सपना है। क्योंकि जब तेरा सपना भीतर टूटेगा, तू आख खोलेगा, तभी तुझे सूरज का प्रकाश अनुभव हो सकता है। जीवन में कुछ भी स्थायी नहीं है, कुछ भी स्थायी हो नहीं सकता। किसी भी चीज को स्थायी बनाना हमारे हाथ में नहीं है। केवल मुर्दा चीजें स्थायी हो सकती हैं। कोई भी चीज जितनी ज्यादा जीवंत है, उतनी ही ज्यादा क्षणभंगुर होगी। आज जीवन है कल की किसे खबरः रह भी सकता है, नहीं भी रह सकता। उसका नियंत्रण हमारे हाथ में नहीं है। हम उसे पैदा नहीं कर सकते या तो वह होता है अथवा नहीं होता है—हम बस असहाय है। इस जगत में केवल पत्थर स्थायी हो सकते हैं, फूल नहीं हो सकते और जीवन पत्थर नहीं है; वह एक फूल है, और वो भी अदभुत तरह फूल। इसलिए जो करना है उसे आज कर लो। कल पर मत टालो; क्योंकि कल मृत्यु है, जीवन आज है। जीवन सदा आज है, मृत्यु सदा कल है। क्षण भर के बाद की कौन कहे, क्षण भर बाद हम हो या न हो। इस जीवन का उपयोग हम करते है पदार्थ के लिए, जड के लिए और सोचते है; कल जब सब काम खत्म हो जाएगा, जीवन की दुकान बंद करने का समय आ जायेगा, तब याद कर लेंगे परमात्मा को। तब पढ़ेंगे भागवत गीता, तब करेंगे ध्यान। अभी तो मौज मस्ती का टाइम है। मनुष्य सोचता है कि जब वह किसी काम का नही रह जाता तब वो भक्ति, अध्यात्म के लायक होता है। हम किसे धोखा दे रहे है, स्वंय को या परमात्मा को। जरा सोचे!

इसलिए मुक्त होना है, तो अभी होना है। ध्यान करना है, तो अभी करना है। प्रार्थना से भरना है, तो अभी भरना है। स्वयं को जानना है, तो अभी जानना है। ये जो लोग अपने को मोटिवेशनल स्पीकर बताते है। शरीर के लिए जीते है और हमें 100 साल जीने की गारेंटी देते है। इनके चक्कर में न पडे, 100 साल भी यदि व्यर्थ में गये तो ऐसे लम्बे जीवन का भी क्या फायदा? बता दूँ कि ये अनुभव हीन लोग जीवन मे

जितने दुखी होते है शायद ही इतना दुखी कोई और होता हो। इसलिए आज ही जीवन मे अपने आंतरिक और बाहर के अनुभवों से सीखना सुरु करे, ताकि जीवन ंरूपांतरण की दिशा में अग्रसर हो सके।

ऊँ————ऊँ————ऊँ————ऊँ————ऊँ